**International Journal of Multidisciplinary Education and Research**
**ISSN: 2455-4588; Impact Factor: RJIF 5.12**
**Received: 22-10-2020; Accepted: 07-11-2020; Published: 24-11-2020**
**www.educationjournal.in**
**Volume 5; Issue 6; 2020; Page No. 27-29**

# सहजोबाई के सहजप्रकाश में उभरती सामाजिक धारायें

**Dr. Pinki Yadav**
Associate Professor, Govt arts College, Kota, Rajasthan, India

**सारांश**
मध्यकालीन सन्त सहजोबाई चरणदासी सम्प्रदाय से जुडी हुई थी तथा चरणदास जी की मुख्य शिष्या के रूप में जानी जाती थी। ये चरणदास सम्प्रदाय की दिल्ली में स्थापित तीन आचार्य गद्रदीयों में से, क की संस्थापक थी। इनका जन्म 1782 वि. स. में हुआ था। 11 वर्ष की अवस्था में इन्होनें सन्तं चरणदास जी दीक्षा ली तथा 18 वर्ष की अवस्था में सहजप्रकाश नामक ग्रन्थ की रचना की। इनके समय में दिल्ली व भारतीय संस्कृति विषम परिस्थितियों से विजडित थी व समाज अनेंक दृष्टियों से पतन की और अग्रसर था। सामाजिक वातारण में नियमों, मान्यताओं, मर्यादाओं का ह्रास व अविश्वास हिसा स्वार्थपरता, संघर्ष, काम, कोध आदि का उत्थान हो रहा क्षा। इन परिस्थितियों में सहजोबाई ने अपने सहजप्रकाश में जहाँ धार्मिक धारा को प्रवाहित किया वहीं सामाजिक धाराओं के अन्तर्गत नैतिक चरित्र के उत्थान के द्वारा आदर्शित समाज की स्थापना को बल दिया व सामाजिक बुराईयों का विरोध किया। इन्होनें सामाजिक समानता को स्वीकार तथा समाज में सत्संग व साधु की महिमा को स्थापित करने का प्रयास किया।

**मूल शब्द:** सहजोबाई, सहजप्रकाश, सामाजिक धारायें

## प्रस्तावना
मध्यकालीन सन्त सहजोबाई चरणदासी सम्प्रदाय से जुड़ी हुयी थी तथा चरणदासी सम्प्रदाय की स्थापना सन्त चरणदास जी द्वारा 1719 ई. में शुक्र सम्प्रदाय के रूप में की गयी थी आगे चलकर इनके शिष्यों द्वारा शुक्र सम्प्रदाय चरणदासी सम्प्रदाय में परिवर्तित कर दिया गया। चरणदास जी के समय में ही इस सम्प्रदाय की भारत के विभिन्न क्षेत्रों में 108 गद्दीयां स्थापित कर दी गयी थी।[1] इनमें से दिल्ली में स्थापित तीन आचार्य गद्दीयों में से एक गद्दी की संस्थापक सन्त सहजोबाई थी। कुछ लोग सन्त सहजोबाई को चरणदास जी की मुख्य शिष्या के रूप में मानते है तथा उन्हे चरणदासी सम्प्रदाय की एक मुख्य कडी मानते है। सहजोबाई का जन्म श्रावण शुक्ल पंचमी को 1725 ई (1782 वि. स.) में दिल्ली के परीक्षितपुरा में हुआ था।[2]
11 वर्ष की अवस्था में इन्होंने सन्त चरणदास जी से दीक्षा ग्रहण की[3] तथा चरणदास जी ने इन्हें अष्टांग योग, नवधा भक्ति का ज्ञाता बनाकर योगाभ्यास करवाया व 5 वर्ष तक अखण्ड समाधि लगाने की शक्ति का ज्ञान करवाया जिसे प्राप्त करके सहजोबाई त्रिकाल बन गई।[4] चरणदास जी के जीवनकाल में ही इन्होंने सम्प्रदाय व समाज में अपना अलग स्थान बना लिया था।[5] जेम्स हेस्टिंगज ने भी इनकी उपलब्धियों के आधार पर इनको चरणदास जी के शिष्यों में सर्वाधिक सम्मानीय बताया है। सहजोबाई को दिल्ली की मीराबाई कहा जाता है क्योंकि इन्होंने भी मीरा की तरह राधाकृष्ण की युगलोपासना कर एवं श्री कृष्ण को निर्गुण निराकर का सगुण साकार रूप स्वीकार करते हुए अपना समर्पण कर दिया।[7] 18 वर्ष की अवस्था में इन्होंने सहजप्रकाश नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें भक्ति सम्बन्धि दोहों का अपूर्व संग्रह है।

## उद्देश्य
इस शोध पत्र का उद्देश्य सहजोबाई के ग्रन्थ सहज प्रकाश में समाहित सामाजिक विचारों को सामने लाना है क्योंकि अब तक यही माना जाता है कि इनका यह ग्रन्थ धार्मिक ग्रन्थ है जिसमें कृष्ण भक्ति के सगुण व निर्गुण भाव, गुरू की महिमा, वैराग्य उपार्जन आदि को व्यक्त किया है।[8]
इसमें इन्होंने गुरूभक्ति को भक्ति में सर्वोपरि मानते हुए गुरू की महिमा का बखान किया है व गुरू को भगवान से ऊपर स्थापित किया हैं। इसके साथ ही अपने धार्मिक विचारों में वैराग्य उपार्जन, पूर्व जन्म विवरण, उव्पतिमरण, कृष्ण भक्ति के सगुण व निर्गुण भाव की अभिव्यक्ति को व्यक्त किया है। [8] लेकिन यहाँ एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि सहजोबाई ने जहाँ धर्म को महत्व दिया है वहीं उन्होंने समाज को भी यथायोग्य स्थान देते हुए तात्कालिक समाजिक बुराईयों का कडा विरोध किया है। इन्होंने समाज के दूषित वातावरण की ही निन्दा नहीं कि अपितु समाज की बुराईयों के कारणों का भी उल्लेख किया है तथा इन कारणों को दूर करने के उपाय व लोगों को समाज के प्रति कर्तव्यनिष्ठ सचेत करते हुए समाज सुधारने पर बल दिया है।[9] अतः इस शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य सहज प्रकाश प्रवाहित व समाहित सामाजिक धाराओं को व्यक्त करना है।

**मुख्य बिन्दुः** इस शोध पत्र के मुख्य बिन्दु सहजोबाई के समय में तत्कालिक सामाजिक स्थिति, सहजोबाई द्वारा पाखण्डों का अपने दोहों व वाणी के माध्यम से विरोध, सामाजिक समानता पर बल, सामाजिक दोष के कारणों का उल्लेख जैसे सत्य असत्य का बोध ना होना, तृष्णा से ग्रषित होना, समाज के सम्बन्धों को स्थायी समझना आदि, समाज सुधार के लिए सत्संग पर जोर, सत्संग में व समाज सुधार में साधु की उपयोगिता व समाज सुधार में गुरू की महत्ता आदि है।
सहजोबाई के समय में तात्कालिक समाज विषम परिस्थितियों से विजडित व अनेक दृष्टियों से पतन की और अग्रसर था। सामाजिक मूल्यों, आदर्शो, तथ्यों, उद्देश्यों आदि में निरन्तर गिरावट आ रही थी व बौद्धिक धरातल नीचे गिरता जा रहा था।[10] तत्कालीन मानव हीन मनोवृत्तियो में संलग्न था व दंभ, अहंकार चारित्रिक पतन, धन प्रतिवाद असत्य, सम्भाषण आदि की भावना विकसित हो रही थी।[11] लोगों की कथनी करनी में साम्य नहीं था[12] तथा आमजन रूढिवादी, अन्धविश्वासी, पुरातनवादी वृत्तियों से व्याप्ति था। सामाजिक वातावरण में नियमों, मान्यताओं, मर्यादाओं का ह्रास हो रहा था व अविश्वास, हिंसा, स्वार्थवरता, संर्घष, काम, क्रोध लोभ, मोह आदि का उत्थान हो रहा था।[13] राजनीतिक व सामाजिक परिस्थितियों का सम्बन्ध अन्योनाश्रित होता है वे एक के पतनोन्मुख–मुख होने पर दूसरे का पतन होना स्वाभाविक व अनिवार्य होता है।[14] इस समय राजनीतिक परिस्थितियों का समाज पर सीधा प्रभाव पडा था, राजदरबारों का

व्यापक प्रभाव समाज पर अंकित था तथा सामान्य जनता शोषण का शिकार थी व अधिकारी व उच्च वर्ग बाहरी प्रदर्शन को प्रतिष्ठा का मापदण्ड मान रहे थे।[15] इस काल के सूफी सन्त साई बुल्लेशाह ने इस समय के सामाजिक स्थिति का यथोचित वर्णन किया है।[16]

इन विपरीत परिस्थितियों में सहजोबाई ने सहजप्रकाश में स्पष्टवादिता अपनाते हुए समाज की बुराई को न केवल बताया अपितु उसका विरोध कर सुधारने पर बल दिया। सामाजिक समानता पर उन्होने स्पष्ट रूप से समानता पर बल दिया और असमानता का विरोध करते हुए कहा कि सच्चिदानन्द का रूप, वर्णन, जाति नहीं होती तो आपस में असमानता क्यों।

''अर्थात रूप वरण जाकें नाहीं, सहजो रंग न देह। माता पिता वांके नहीं, जाति पांति नहीं गेह।।''

सहजोबाई के अनुसार हर मनुष्य में समान परमात्मा का समान अंश विधमान है। उन्होंने अमीरों गरीबों के भेद को भी खुले रूप में विरोध किया और उनका मानना था कि भगवान के यहाँ राजा रंक समान है। उसके यहाँ गरीब व अमीर मे कोई अन्तर नहीं होता सभी के लिए भगवान प्रदत्त जन्म मरण भी एक समान होता है।

कै गरीबी सिर टोकरी, के सिर धत्तर होय।
जन्म मरण में एक राम, सहजो धोति न दोय।

उनका मानना था कि समाज के लोग साधना मार्ग को अपनाकर व नैतिक आचरण में सुधारकर, सत्य असत्य के भेद को जानकार सामाजिक बुराइयों पर विजय प्राप्त कर सकते है। सहजोबाई की सामाजिक विचार धारा दार्शनिक पूटता लिए हुए है। उन्होंने सत्य असत्य के भेद को समाज से जोडते हुए कहा कि समाजिक बुराईयों का एक बड़ा कारण सामाजिक व्यक्ति को सत्य असत्य की पहचान नहीं होना है। इसलिए समाज के लिए यह जरूरी है कि इस संसार में मनुष्य सच्चे ज्ञान को जाने व असत्य को पहचाने अर्थात मनुष्य को नारी को मन्दिर व सन्तान को धन नहीं समझना चाहिए और न इसके लिए घमण्ड करना चाहिए क्योंकि ये सब सम्बन्ध झूठे होते है और इन झूठे सम्बन्धों के कारण ही मनुष्यजन समाज के भौतिक आकर्षण में पडकर सामाजिक दोषों को जन्म देते है। सहजोबाई के अनुसार –

यह मन्दिर यह नारि है, यह धन यह सन्तान।
तेरो न सहजो कहै, काहे करति गुमान।।
झूठा नात जगत का, झूठा है घर वास।
यह जग झूठा देखकर, सहजो भई उदास।। [16]

उनका मानना था कि समाजिक दोषों का निवारण जिस तरह सत्य को जानकर किया जा सकता है उसी तरह अविधा, भ्रम, माया के यथार्थ रूप को जानकर भी किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि मनुष्य को माया के यथार्थरूप को जानकर इस दृश्य जगत के वास्तविक रूप को जानना चाहिए तथा जीवन व जगत के वास्तविक रूप को जानना ही आत्मबोध का सूचक है इस आत्मबोध के द्वारा न सिर्फ मनुष्य के दोष दूर होगें बल्कि इससे समाज के दोष भी दूर होगें क्योंकि मनुष्य माया और अविधा के कारण जगत के प्रेम में खोया रहता है व सदा सपने बुनता रहता है वह इसी असत्य को सत्य (सुख) मानकर सुख प्राप्ति का प्रयास करता है व सुख की प्राप्ति होने के बाद इसकी बढोतरी के लिए निरन्तर प्रयास करता है, व इन्हीं प्रयासों से वह सामाजिक बुराईयों को जन्म देता है। [17] सहजोबाई ने सहज प्रकाश में मानव काया व सामाजिक सम्बन्धों की यर्थाथता को समाज को बताते हुए कहा कि बालक के पैदा होते ही अनेक सामाजिक व पारिवारिक सम्बन्ध बनते है और मनुष्य अज्ञानता के कारण इन सम्बन्धों को स्थायी समझकर अभिमान करता है व इसी को सुख मान लेता है। इन सम्बन्धों के सुख के लिए वह गलत कार्य करता है जबकि उसे काया के यथार्थ को जानकर ही कार्य करने चाहिए उसे समझना चाहिए कि मानवकाया का यथार्थ पांच तत्व व पच्चीस प्रकृतियों का संघात है। अगर वह ऐसा जान जाता है के समाज के गलत कार्य करना अपने आप छोड देता है।[18] आगे सहजोबाई ने मानव काया के यथार्थ को बताते हुए कहा

जगत तरैया भौरा की सहजो ठहरत नाहीं। जैसे मोती ओस का पानी आपुली गाहा
धुआँ का सागढ बना, मन में राख संजोग। सांई माई सहजिया, कबहूँ, साँच न होय।
ऐसे ही जग झूठ है आतम को थिरजान। सहजो काल भरवा सके, ऐसा रूप पिछान।

अर्थात जिस काया सुख के लिए आप समाजिक दोषों को जन्म दे रहे है यथार्थ में उसे वृद्धावस्था में अनेक कठिनाई झेलनी है और इस कठिनाई के समय में पिता, पुत्र, पौत्र, सगे सम्बन्धी कोई साथ नहीं देते है। इसलिए यह मानकर चलो कि सामाजिक सम्बन्ध, काया बन्धन के कारक है क्योंकि इनमें पड कर ही मोह वश मनुष्य सत्य के लक्ष्य से भटककर असत्यता की और जाता है, भारी कष्ट उठाकर सामाजिक प्रतिकारों को जन्म देता है।[19] इसलिए जगत को अनित्य व आत्मा को सत्य मानकर इसको पहचान कर समाज में सम्बन्ध व कार्य करो जिससे सामाजिक प्रतिकार कम हो।[20]

उन्होनें शरीर की नश्वरता को समाज से सम्बन्धित करते हुए कहा कि मनुष्य शरीर नश्वर है लेकिन शारिरिक सुख की चाह में रंगे होने के कारण मनुष्य घोर कष्ट की परिछाया में रहता है वह सारी उम्र मद, मोह, लोभ में पडकर गलत काम करता है व 84 हजार योनियों को भोगता है। अगर वह शरीर की नश्वरता को जान ले तो ना, गलत काम करेगा व ना 84 हजार योनियों से गुजरेगा।[21]

उनका मानना था कि समाज में जो अत्याचार, अनाचार, विषमता, वैषलापन, संघर्ष आदि है इसके पीछे मनुष्य का अज्ञान है इसलिए अगर इन सभी दोषों को दूर करना है तो ज्ञान का दीप जलाना होगा और जिस दिन ऐसा होगा उस दिन सब बुराईयाँ अपने आप समाप्त हो जायेगी। उन्होने ज्ञान को परिभाषित करते हुए कहा कि जग में तू आया है वहीं तुझे जाना है तेरे रिश्ते, नाते, कुटुम्ब सब झूठे है। कोई किसी के रोग, दुख, मरने में साथ नहीं देता है इसलिए हे मानव इस जगत में दीपक की तरह तूझे बूझना ही है लेकिन हे मानव तू इसे पहचान कि यह दीपक तूझे किस लिए मिला है। वरना तू दीपक के बूझने के बाद पछताएगा''। क्योकि यह काल तो हिरणाकुश, दुर्योधन, शिशुपाल, कुंभकरण, रावण आदि बडे–बडे योद्धाओं को खा गया।'' यहाँ सहजोबाई अपने सहज प्रकाश के माध्यम से यह भी कहना चाहती है कि ज्ञान की सत्यता को जाने व उसके अनुसार जीवन जीऐ ऐसा करने से आप तो परम आनन्द मोक्ष की प्राप्ति करोगें ही साथ ही समाज में भी अनेक बुराईयों अपने आप समाप्त हो जाऐगी।[22]

समाज की अनेक बुराईयों का एक कारण उन्होने तृष्णा को भी माना था उसके अनुसार अगर तृष्णा को त्याग देते हो तो काम , कोध , लोभ मोह माया की समाप्ति होती है, अहम शान्त होता है, सत्य, शील, दया, धर्म आदि गुण अपने आप आते है तथा यही सामाजिक बुराईयों की समाप्ति का अमोध शस्त्र है।

सहजोबाई ने समाज के मनुष्यों की बुराईयों दूर करने के लिए साधन का भी उल्लेख किया उनके अनुसार समाज में सत्संग का संग ही परमार्थ होता है यह दिग्भ्रान्त समाज व मनुष्य को सही

दिशा निर्देश देता है तथा यह रोशनी देने वाला ऐसा तीर्थ होता है जो पार लगाता है। [23]

सहजो दुखभ पाइये, सत संगत में ढौर।
सत संगत की नाच मेंम न दीजे नर नार।
टेक बली द्रढ व्यक्ति की सहजो उतरे जाए।

उन्होनें कहा साधु (सत्संग) द्वारा मनुष्य व समाज को ज्ञान देता है व शारीरिक व मानासिक रोगों से मुक्त करवाता है।[24]

साधु भिन्ने पूरी भई जनम जनम की आस।
सहजों पायों भगतों संत संगत में रास

यह कुटिल मनुष्य को हसं बना देता है, मोह की नींद से जगाकर मुक्ति के मोती चुगने सिखा देता है लेकिन ये सब कार्य उस साधु सत्संग से प्राप्त किये जा सकते है जिसने काया को सिद्ध कर लिया, आलस्य, वाद विवाद, कुवाच्च, वाचन, लोभ, तृष्णा, असत्यता, को जीत लिया हो तथा जीवन में दांन, दया, क्षमा, सज्जनता, शीतलता, धर्य, पांचो इन्द्रियों को वशीकरण को अपना लिया हो। इनके अनुसार ऐसा साधु समाज में एक ऐसी फुलवारी होती है जो बुराईयों को समाप्त कर करके शीतलता व सुगन्ध देता है व अन्धेरा को समाप्त करे रोशनी देता है।[25]

तन को साजे ही रहें, चित्त को राखे हाथ।
सहजो मन को यो जहे, चन्ने न इन्द्रिय साथ।।
दीरध बुधि जिन की महाशील सदा नैन।
चेतनता हिरदय वसे, सहजो शीतल नैन।।
श्रागद्वेष से रहित, वैरागी निद्रैन्दा
सहजों इच्छा ना रही, पाया वृहज की संघ।।

सहजोबाई ने एक आदर्शित व्यक्ति व समाज के लिए गुरू की महत्वा गुरू की व प्राथमिकता को स्वीकारा है। उन्होंने गुरू को मनुष्य को सुधारने वाला पहला दर्शक व्यक्ति माना है।[26]
उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि दिल्ली की मीराबाई, चरणदास जी की प्रिय शिष्या, चरणदास सम्प्रदाय की मुख्य कडी सहजोबाई ने सहजप्रकाश में जहाँ धर्म की विभिन्न धाराओं को प्रस्फुटित किया वहीं तात्कालीन समाज में जिसमें संघर्ष, विद्रोह, लूटपाट, कदाचार,प्रतिहिंसा, शोषण, अन्धविश्वास, भ्रष्टाचार, प्रतिरोध, सदव्यवहार, अनिष्ठा, महत्वकांक्षा, पथभ्रष्टता व्याप्तित थी तथा सामाजिक व पारिवारिक मूल्यों से विहीन अन्धविश्वासिता, उत्पीडित, अस्थिर व विजडित थी उसमें विभिन्न सामाजिक मान्यताओं को स्थापित करने के लिए प्रकाश, आशा, प्रेम पर स्थापित योग, ज्ञान, कर्म व भक्ति के मार्ग को अवलम्बित किया। इन्होंने सहजप्रकाश में अपनी लेखनी के माध्यम से पारस्परिक जीवन मूल्यों के प्रति पुनः जागरण का सन्देश सुनाया व सामाजिक बुराइयों का विशेष विरोध करके सुधारने का प्रयास किया। सामाजिक बुराईयों का मूल कारण अज्ञानता को माना व इसकी समाप्ति के लिए समाज में नैतिक आचरण सुधारने व समानता को अपनाने वाले साधु सत्संग करने व सबके अन्तकरण में परमात्मा के अंश की स्वीकारोक्ति पर बल दिया तथा तृष्णा, अविधा, माया को छोडने लिए प्रेरित किया । इनके सहजप्रकाश में समाजिक विचारों के कारण उन्होंने धार्मिक धाराओं के साथ साथ सामाजिक धाराओं में भी अपनी प्रासंगिकता का परिचय दिया।

## सन्दर्भ


1. श्याम सुन्दर शुक्ल – चरणदासी सम्प्रदाय और उसका साहित्य – पृष्ठ – 246
2. भार्गव समाज सभा का 51 वां सम्मेलन जयपुर
3. ध्यानेश्वर जोगजीत – लीला सागर – पृ. 226
4. सहजोबाई – सहजप्रकाश – पृ. 19
5. भार्गव समाज सभा का 51 वॉ सम्मेलन जयपुर – लेख – मुरारीलाल भार्गव
6. एनसाइक्लोपिडिया ऑफ रिलिजन एण्ड एथिम्स वॉल्यूम – 3 पृष्ठ 365
7. ध्यानेश्वर जोगजित – लीला सागर ' पृ. 226
8. सहजोबाई सहज प्रकाश – पृ. 129, 130
9. सहजोबाई सहज प्रकाश – पृ – 6–13
10. 1. यदुनाथ सरकार – औरंगजेब – पृ. 339
    2. श्री विष्णुनारायण भार्गव – चरण कमल की छांही– पृ. 113
    3. स्मारिका भार्गव पत्रिका – 56 वें अखिल भारतीय भार्गव सम्मेलन जयपुर – 1977 – III
11. 1. त्रिलोकी नारायण दीक्षित – जीवन चरित्र सन्त चरणदास – पृ. 9
    2. श्री विष्णुनारायण भार्गव – चरण कमल की छांही – पृ. 88
12. त्रिलोकी नारायण दीक्षित – जीवन चरित्र सन्त चरणदास – पृ. 11
13. त्रिलोकी नारायण दीक्षित – जीवन चरित्र सन्त चरणदास – पृ. 7
14. श्याम सुन्दर शुक्ल – चरणदासी सम्प्रदाय और उसका साहित्य – पृ. 51
15. टी.आर. श्रृंगारी – सन्त चरणदास जीवन और उपदेश – पृ. 13, 14
16. श्री विष्णुनारायण भार्गव – चरणकमल की छांही – पृ. 53, 113
17. सहजोबाई – सहजप्रकाश – पृ. 86
18. सहजोबाई – सहजप्रकाश – पृ. 13
19. सहजोबाई – सहजप्रकाश – पृ. 65
20. सहजोबाई – सहजप्रकाश पृ. 66
21. सहजोबाई – सहजप्रकाश '– पृ. 67
22. सहजोबाई – सहजप्रकाश – पृ. 85
23. सहजोबाई – सहजप्रकाश – पृ. 67
24. सहजोबाई – सहजप्रकाश – पृ. 53, 54